International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN :2581-9925, Impact Factor: 7.555, Volume 07, No. 02(III), April- June, 2025, pp. 35-38

# ढोली जाति का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन

**ललित कुमार पंवार***

सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान।

*Corresponding Author: lalitkpanwar7@gmail.com

**सार**

*यह शोध प्रबंध राजस्थान की लोकसांस्कृतिक परंपराओं में विशिष्ट स्थान रखने वाली ढोली जाति के ऐतिहासिक विकास, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक योगदान और वर्तमान स्थिति का एक समग्र एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। ढोली जाति, मुख्यतः वाद्य यंत्रों और लोकगायन की परंपरा से जुड़ी एक पारंपरिक जाति रही है, जो विशेष रूप से राजस्थानी लोकगीत, वीरगाथाएँ, पंथी गान, तथा शादी–ब्याह के मांगलिक गीतों की प्रस्तुति में निपुण रही है। शोध में ढोली जाति की उत्पत्ति, सामाजिक वर्गीकरण, राजस्थानी दरबारों और ग्रामीण समाज में उनकी भूमिका, तथा बदलते समय में उनके पेशे और सामाजिक प्रतिष्ठा में आए परिवर्तनों का विश्लेषण किया गया है। इतिहास के साथ–साथ यह अध्ययन लोक साहित्य, मौखिक परंपराओं, वाद्य वादन कला और सांस्कृतिक उत्तराधिकार के संरक्षण में ढोली जाति की भूमिका को रेखांकित करता है। शोध के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि ढोली जाति ने राजस्थान की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। किन्तु आधुनिक सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों, तकनीकी विकास और सांस्कृतिक बाजारीकरण के प्रभाव में इस जाति की परंपरागत भूमिका कमजोर हुई है। इस अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि लोकपरंपराओं के संरक्षण हेतु ढोली जाति जैसी सांस्कृतिक इकाइयों का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है।*

***शब्दकोश:*** *शोध प्रबंध, लोकसांस्कृतिक परंपरा, सामाजिक वर्गीकरण, ग्रामीण समाज, मौखिक परंपरा।*

**प्रस्तावना**

रण भूमि में युद्ध प्रारम्भ करने का नगाड़ा बजना या किले की प्राचीर से जयघोष की शहनाई, या राजमहल में नौबत, मानव जीवन के किसी भी शुभ कार्य को प्रारम्भ करने या अत्यंत हर्ष आनंद प्रकट करने के लिए अगर सबसे पहले किसी व्यक्ति या जाति को आमंत्रण दिया जाता है तो वह है ढोली।[1]

बच्चे का जन्म हो, या जलवा पूजन, मुण्डन हो, या सगाई, बन्दौली हो, या फेरे, जीवन के अंतिम पड़ाव में बैकुंठी हो, या बारह दिन, नूतन गृह प्रवेश हो या जीत के झुलुस का उल्लास हो, स्वागत हो या सत्कार हो, या तीज त्योहारों को शुभ रंगो से सरोबार करने, चाहे होली की गैर हो या दीपावली की रामराम, भगवान के मंदिर की प्रतिष्ठा हो या उनके जन्मोत्सव कि शोभायात्रा, या अनायास ही कोई खुशी प्रकट करनी है तो ढोल की थाप, नगाड़ा और शहनाई ही सबसे पहले गूंजती है, इनके बजते ही मंगल गान प्रारम्भ होता है।

समाजशास्त्री प्रो. के. एन. व्यास ने अपनी पुस्तक "राजस्थान की जातियां और सामाजिक आर्थिक जीवन" में लिखा है कि जन्म से लेकर मरणपर्यन्त अनेक अवसरो पर ढोल व ढोली की आवश्यकता अनिवार्य है मांगलिक कार्य इनके बिना प्रारम्भ करना ही अशुभ माना जाता है अतः ढोली को मंगलमुखी कहा जाता है।[2]

हिंदी साहित्य के विख्यात ग्रंथ अमरकोश के प्रथम कांड का ग्यारहवें श्लोक में गंधर्व देवता से उत्पन्न संतान ढोली का उल्लेख है।

रिपोर्ट मरदुमशुमारी राजमारवाड़ के पृष्ठ संख्या 364 में इस जाति की उत्पति के संदर्भ में पौराणिक मान्यता है कि ″ढोली जाति की उत्पति भगवान शिव के द्वारा की गई है ″वृतांत है कि जंगल में जहा शिव पार्वती तपस्या करते थे वहा एक बंदर उछलकूद करता था एक दिन पेड़ की शाखाओं में उलझकर मर गया और उसकी आंते लटक कर सुख गई जब हवा चलती तब उस आंत से सुरीली आवाज निकलती पार्वती जी को यह ध्वनि पसंद आई तब महादेव जी ने वंदन नामक गंधर्व पैदा करके उसे उस आत/तात से गाने बजाने की शिक्षा दी इसी गंधर्व से ढोली अपनी उत्पति मानते है कालांतर में इसी गंधर्व को देवता की संज्ञा दी है गंधर्व देवता जो संगीत के देव माने जाते है।″[3]

एक मत यह भी है कि सामाजिक संरचना के निर्माण के समय जिन लोगो ने जो व्यवसाय अपनाएं उसी आधार पर जाति हो गई जैसे सुनार, लोहार, तेली, इसी प्रकार ढोल बजाने वाले ढोली, नक्कारा बजाने वाले नक्करची, दमामा बजाने वाले दमामी। इससे स्पष्ट होता है कि जितनी पुरानी सामाजिक संरचना है उतनी पुरानी ही ढोली जाति।

राजतंत्र या राजा महाराजाओं के शासन में किले की मुख्य पोल या प्रवेश द्वार तथा राजमहल के प्रांगण में एक नक्कारखाना जरूर स्थापित होता था और त्योहार व शुभ दिन के अवसर पर उस नक्कार खाने की पूजा राजपरिवार की उपस्थिति में होती तथा रणभूमि में भी सबसे आगे नगाड़े व शहनाई की रणभेरी बजाते। साथ ही रनिवास में ढोली जाति की सबसे बुजुर्ग महिला को स्थायी आवास, किले में या रावले में ही मिलता था तथा राजपरिवार में आने वाली नई दुल्हन भी इस बुजुर्ग महिला (ढोली) के पावो में झुककर प्रणाम करती जिसे पगा लागणा कहा जाता। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि इस जाति को प्राचीन काल में तथा राजतंत्र में उचित सामाजिक सम्मान दिया जाता था तथा यह वर्ग शासक के सदैव करीब रहा है। इनके निवास भी किले की तलहटी में या रावले के करीब ही स्थित थे।[4]

समाजशास्त्री देवेन्द्र सिंह गहलोत और के. एन. व्यास लिखते है कि ढोल केवल भारत वर्ष में ही नहीं वरन् विश्व के कई देशों में पाया जाता है अतः यह जाति सर्वत्र है साथ ही इस पेशे की गुणवता को देखते हुए अब तो दूसरी जातियों ने भी यह कार्य करना शुरू कर दिया है जो कि उनकी आजिविका का प्रमुख आधार है। 1891 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में इस जाति के 3768 पुरूष व 3011 महिलाएं थी।

मरदुमशुमारी रिपोर्ट राजमारवाड़ में सभी जातियों का वर्गीकरण किया गया जिसमें ढोली को राजपदवी प्राप्त ब श्रेणी में रखा गया इनके बाद स श्रेणी में व्यापारी, सुनार का उल्लेख मिलता है जो कि इस जाति के सामाजिक स्तर के उच्चता को दृष्टिगोचर करता है।[5]

मध्यकालीन इतिहास में अबुल फजल द्वारा लिखित ग्रंथ 'आइन–ए–अकबरी' में भी गाने बजाने वाली जातियों में ढोली का उल्लेख मिलता है[6] तथा यह भी स्पष्ट होता है कि परवर्ती मुगल शासकों, जो कि निर्बल थे सुरापान व राग रंग करते उस समय ढोली जो गाते बजाते थे का रनिवास में तथा दरबार में सीधा प्रवेश था और कई बादशाहों के खासमखास रहे है। इसका उल्लेख मारवाड़ के इतिहास में भी मिलता है कि जोधपुर महाराजा रामसिंह जी ने अमिया नामक ढोली को मुसाहिब (अर्थात् निजि सचिव जो राजा, रानी, महाराजा या महारानी के साथ व्यक्तिगत रहकर उनके कार्य करता) का पद दिया। जो कि उसकी योग्यता का प्रमाण है।[7]

इस जाति का विभिन्न उपजातियों में वर्गीकरण कुछ इस प्रकार है :—[8]

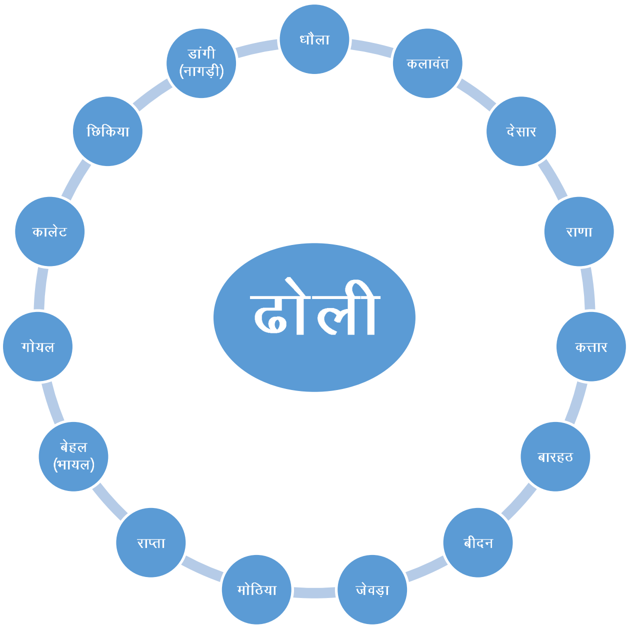


श्रवाबी मोठिया, गोरेल, कालेट, काठा छिकिया वेहलै, सीपा रानीदा, धोला, कटार, बीदनं व गोयल बारहठ/रागा आदि अनेक उप जातियां भी इस जाति की अनेक गौत्र है जिसके पीछे प्रमाणिक स्रोत है ये खापे अधिकतर अपनी उत्पति राजपूतो से मानती है और इनके उपनाम भी एक जैसे है।

प्रमाण है कि जब सांभर में चौहानों की हार हुई और दुश्मन उनके सिर काटने लगे तो हमारे वढेरो ने मौत के डर से अपने आपको ढोली (नक्कारची) बताकर जान बचाई और यही पेशा अगीकार कर लिया यह लोग पाली, जालौर, सांचौर क्षेत्र में सर्वाधिक है।[9]

देधड़ा—ऐतिहासिक स्रोत्रो के अनुसार राजपूत ही थे मारवाड़ में 1291—1309 तक राव धूहड़ जी राठौड़ के समय ही पड़ियार राजपूत थे, एक दिन धूहड़ जी अपनी कुलदेवी नागणेचिया के दर्शन व पूजा करने नागाणा गये वहा पूजा के समय पड़ियार से नक्कारा बजाने को कहा पड़ियार ने अरज किया कि यह काम तो मेरा नहीं

है लेकिन कोई बजाने वाला वहा नहीं था और धूहड़ जी हठ चढ़ गये तथा आदेश दिया कि दे, धड़ाधड़ दे, धड़ाधड़ नक्कारे पर मारता जा और पड़ियार ने ऐसा ही किया इस घटना से पड़ियार के भाइयों ने उसे राजपूत बिरादरी से अलग कर दिया, और जिससे ढोलियों की नई खाप देधड़ा बनीं।[10]

इस प्रकार तेरवा अपनी उत्पति पंवार शासक जगदेव पंवार जो कि राजपूत शासक थे से मानते है। इसी के साथ सिंदल व डागी भी राठौड़ों से ढोली बने है इसके पीछे भी वृतांत है जिसका जिक्र अन्यत्र करूगा।

ढोलियो को मेवाड़ में बारहठ व जयपुर में राणा कहते है इसके पीछे भी एक ऐतिहासिक वृतांत है जिसका जिक्र अभी नहीं कर रहा हूँ।[11]

इस जाति के लोगो ने कई मर्तबा साहसी कार्य भी किये है एवं स्वामी भक्ति भी दिखाई जिसके कई दृष्टांत मिलते है जैसे – जब चित्तौड़ किले में राव रिड़मल जी को सिसोदियों ने घात से मारा था तो एक ढोली ने शहनाई में यह गीत गाकर जोधा जी को जो नीचे थे भागने का औसान दिया 'जोधा थारो रिड़मल माराणो भाग सके तो भाग'

उसी प्रकार आउवा में चारणों का धरणा थी परिस्थिति वंश चारणों पर संकट आया तो वहां गोविंद ढोली ने सबसे पहले स्वयं कटार खाकर वीरगति को प्राप्त हुआ।

इसी प्रकार जैतारण शासक खीमकरण के दरबार में भी एक ढोली भगत था जो खजांची के साथ सेनानायक था ऐसे अनेक वृतांत है जिनका अलग से आलेख में वर्णन करूंगा।[12]

इसी प्रकार यह समाज जो राजा महाराजाओं के हमेशा करीब रहा और राजपरिवारों ने भी इसे गले लगाया और इन्हें राजदमामी की पदवी दी गई।

जिस प्रकार चारण समाज को राजाओं द्वारा जागीर प्रदान की जाती और गांवों का स्वामी बनाया जाता उसी प्रकार इस समाज को भी जागीर प्रदान करने के या भूमि दान देने के उल्लेख मिलते हैं।[13]

अतः निःसन्देह यह समाज शुभ कार्य का अगवानी रहा है और कला के क्षेत्र में संपूर्ण भारत व विश्व में संस्कृति का वाहक रहा है। इस जाति की भारतीय सामाजिक संरचना में एक विशिष्ट पहचान है धर्म व समाज के सभी आवश्यक कार्य सम्पादित करने में इनका अमूल्य योगदान है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची**


1. रिपोर्ट मरदुमशुमारी राजमारवाड़ 1891 ई.
2. व्यास, डॉ. के. एन. – राजस्थान की जातिया और सामाजिक जीवन
3. अबुल फजल कृत आइने अकबरी
4. हरदयाल, मुंशी, रायबहादुर, राजस्थान की जातियों का इतिहास एवं रिति–रिवाज
5. रिपोर्ट मरदुमशुमारी राजमारवाड़ 1891 ई.
6. अबुल फजल कृत आइने अकबरी
7. गहलोत, जगदीशसिंह : राजस्थान का सामाजिक जीवन, जोधपुर
8. गहलोत, सुखवीरसिंह : 1. राजस्थान के रीति–रिवाज, जोधपुर 2. कास्ट्रस एण्ड ट्राइब्स ऑफ राजस्थान, जोधपुर
9. रिपोर्ट मरदुमशुमारी राजमारवाड़ 1891 ई.
10. हरदयाल, मुंशी, रायबहादुर, राजस्थान की जातियों का इतिहास एवं रिति–रिवाज
11. व्यास, डॉ. के. एन. – राजस्थान की जातिया और सामाजिक जीवन
12. भाटी, जितेन्द्र सिंह, उदावतों का इतिहास
13. कर्वे, इरावती : हिन्दू समाज और जाति व्यवस्था


❖◆❖